अनगार धर्मामृत

पंडित आशाधर कृत

अनुवादक - सिद्धान्तशास्त्री पं. पन्नालाल जी

प्रकाशक - परमपूज्य चारित्रचक्रवर्ती श्री 108 आचार्य शांतिसागर
दिगम्बर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था
श्री श्रुतभण्डार व ग्रन्थप्रकाशन समिति
फलटण (जिला सतारा)
वी. सं. २४८१

प्रत्याख्यान अथवा स्वाध्यायको अपनेमें स्थापित करनेके बाद साधुओंको [1]गोचारसम्बन्धी दोषों अतीचारोंका प्रतिक्रमण करना चाहिये। और उसके बाद पूर्वाण्हकी तरह अपराण्हकालमें भी मध्याह्नसे दोघडी अधिक समय व्यतीत होनेपर विधिपूर्वक स्वाध्यायका प्रारम्भ करना चाहिये।

अपराण्हकालका स्वाध्याय समाप्त होनेपर दैवसिक प्रतिक्रमण-दिनभरमें जो कोई दोष अथवा अतीचार लग गया हो उसका संशोधन आदि करनेकी विधि बताते हैं।

नाडीद्वयावशेषेह्नि तं निष्ठाप्य प्रतिक्रमम्। कृत्वाण्हिकं गृहीत्वा च योगं वन्द्यो यतैर्गणी ॥ ४० ॥

जब दिनमें दोघडी काल बाकी रहे तब विधिपूर्वक आपराण्हिक स्वाध्यायकी निष्ठापना कर देनी चाहिये। और फिर आण्हिक क्रिया करनेमें जो किसीप्रकारका दोष लगा हो उसका प्रतिक्रमण करना चाहिये। पुनः संयमियोंको रात्रियोग ग्रहण कर आचार्य परमेष्ठीकी वंदना करनी चाहिये।

आचार्यवन्दनाके अनंतर देववन्दना आदि जो करना चाहिये उसका विधान करते हैं:---

स्तुत्वा देवमथारभ्य प्रदोषे सद्विनाडिके। मुञ्चेन्निशीथे स्वाध्यायं प्रागेव घटिकाद्वयात् ॥ ४१ ॥

आचार्यवन्दनाके बाद साधुओंको विधिपूर्वक देववंदना करके प्रदोष---सन्ध्यासमयके अनन्तर दोघडी काल व्यतीत होनेपर पूर्वरात्रिक स्वाध्यायका प्रारम्भ करना चाहिये। और अर्धरात्रिमें दोघडी समय जब बाकी रहे तब उस स्वाध्यायको समाप्त करना चाहिये।

इस पूर्वरात्रिकस्वाध्यायके समाप्त होनेपर साधुओंको उचित है कि वे ऐसा अभ्यास और प्रयत्न करें कि जिससे वे निद्राके वशीभूत न हों। अतएव निद्राको जीतनेके उपाय कौनसे हैं सो बताते हैं:--

ज्ञानाद्याराधनानन्दसान्द्रः संसारभीरुकः। शोचमानोऽर्जितं चैनो जयेन्निद्रां जिताशनः ॥ ४२ ॥

निद्राको जीतनेके चार उपाय हैं। पहला-आहारको जीतना। उपवास या अनुपवास करके-३२ ग्रास मात्र अथवा उदरके तीन भागमात्र जो भोजनका प्रमाण बताया है उससे कम भोजन करके, अथवा ऐसा कोई भी आहार ग्रहण

१---मुनियोंके आहारके गोचार भ्रामरी अक्षमृक्षण और श्वभ्रपूरण ये भेद और इनका स्वरूप पहले बता चुके हैं।

न करके कि जिससे शरीरमें आलस्य या तन्द्रा आ जाय, निद्राको जीतना चाहिये। जिताशनः इस शब्दकी जगह जितासनः ऐसा दन्त्य सकारका भी पाठ माना है। अतएव इस शब्दका अर्थ आसनको जीतना ऐसा होता है। अर्थात् पर्यंकासन या वीरासन आदिसे चलायमान न होकर-आसनके निमित्तसे खेदित न होकर निद्राको जीतना चाहिये। दूसरा उपाय---आराधनाओंकी अविछिन्न प्रवृत्ति है। अर्थात् ज्ञान दर्शन चारित्र और तप इन चार विषयोंकी चारों आराधनाओंके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाले प्रमोदको निरंतर प्रवृत्तिके द्वारा अतिसघन बनाकर निद्राको जीतना चाहिये। तीसरा उपाय संवेग है। अर्थात् पंचपरिवर्तनरूप या दुःखोंके कारण अथवा सर्वथा दुःखमय संसारसे निरंतर डरनेवाला निद्राको जीत सकता है। चौथा उपाय शोक है। जो पूर्वकालमें अपनेसे कोई पाप बन गया है उसका शोक करनेसे भी निद्रा जीती जा सकती है। जैसा कि कहा भी है कि:---

ज्ञानाद्याराधने प्रीतिं भयं संसारदुःखतः। पापे पूर्वार्जिते शोकं निद्रां जेतुं सदा कुरु ॥

अर्थात्---हे आत्मन्! तू निद्राको जीतनेके लिये ज्ञानादिके आराधन करनेमें प्रीति और संसारके दुःखोंसे भय तथा पूर्वसंचित पापोंका शोक सदा किया कर।

जो स्वाध्यायके करनेमें असमर्थ हैं उनके लिये देववन्दना करनेका विधान करते हैं:---

सप्रतिलेखनमुकुलितवत्सोत्सङ्गितकरः सपर्यङ्कः।
कुर्यादेकाग्रमनाः स्वाध्यायं वन्दनां पुनरशक्त्या ॥ ४३ ॥

प्रतिलेखन----पीछीको हाथोंमें लेकर उसके साथ २ ही हाथोंको मुकुलित--अञ्जलिबद्ध करके और उन हाथोंको वक्षःस्थलके मध्यमें रखकर, पर्यङ्कासनसे बैठकर, और मनको एकाग्र बनाकर----अन्य किसी भी विषयकी तरफ अपने चित्तको न जाने देकर साधुओंको स्वाध्यायमें प्रवृत्त होना चाहिये। जैसा कि कहा भी है:---

पलियंकणिसेज्जगदो पडिलेहिय अञ्जलीकदपणामो। सुत्तत्थजोगजुत्तो पढिदव्वो आदसत्तीए ॥

अर्थात्---पर्यंकासनको धारण करनेवाला और पीछीयुक्त अंजलिके द्वारा किया है प्रणाम जिसने ऐसे साधुको अपनी शक्तिके अनुसार सूत्रार्थके स्वाध्यायमें प्रवृत्त होना चाहिये। और भी कहा है कि:---

समझना । जो स्वाध्यायको ग्रहण नहीं कर सकते उन गृहस्थोंके लिये यह नियम नहीं हैं । उनको चाहिये कि आलोचनाको छोडकर बाकी भक्ति बोलकर ही क्रिया करें । इस विषयमें अन्यत्र भी कहा है कि:--

चलाचलप्रतिष्ठायां सिद्धशान्तिस्तुतिर्भवेत् । वन्दना चाभिषेकस्य तुर्यस्नाने मता पुनः ॥
सिद्धवृत्तनुतिं कुर्याद्बृहदालोचनां तथा । शान्तिभक्तिं जिनेन्द्रस्य प्रतिष्ठायां स्थिरस्य तु ॥

अनगार अ. ९

धर्मामृत पान ७५८

अर्थात् चल और अचलप्रतिष्ठामें सिद्धभक्ति और शांतिभक्तिके द्वारा तथा चतुर्थ दिनके स्नानके समय अभिषेक वन्दनाके द्वारा और अरहंतकी स्थिरप्रतिमाकी प्रतिष्ठामें सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति बृहदालोचना और शांतिभक्तिके द्वारा क्रिया करनी चाहिये ।

नैमित्तिक क्रियाओंके वर्णनके प्रकरणमें यहांपर आचार्य पदका प्रतिष्ठापन करते समय जो क्रिया की जानी चाहिये उसकी विधि बताते हैं:----

सिद्धाचार्यस्तुती कृत्वा सुलग्ने गुर्वनुज्ञया । लात्वाचार्यपदं शान्तिं स्तुयात्साधुः स्फुरद्गुणः ॥ ७५ ॥

आचार्यपदके योग्य छत्तीस विशेष गुण हुआ करते हैं । ये गुण जिन साधुओंमें पाये जाते हैं वेही इस पद-पर स्थापित किये जाते हैं । इन गुणोंकी संज्ञा और स्वरूप आगे चलकर लिखेंगे । यहांपर इस पदकी प्रतिष्ठापन क्रियाकी विधि बताते हैं, सो इसप्रकार है कि--जिसके वक्ष्यमाण ३६ गुण सम्पूर्ण संघके हृदयमें विशेष चमत्कार उत्पन्न कर रहे हैं ऐसे साधुको अपने गुरुकी आज्ञा--अनुमतिसे शुभ मुहूर्तमें सिद्धभक्ति और आचार्यभक्तिको बोलकर आचार्यपद ग्रहण करना चाहिये । और उसके बाद शांतिभक्ति करनी चाहिये ।

भावार्थ--जिसमें आचार्यपदको धारण करने योग्य गुणोंको देखते हैं आचार्य उस साधुको इस पदके ग्रहण करनेकी आज्ञा देते हैं और इसके लिये शुभमुहूर्त निश्चित करते हैं । और वह साधु उनकी आज्ञानुसार उस शुभ मुहूर्तमें उस पदको ग्रहण करता है ।

प्रारम्भमें सम्पूर्ण संघके समक्ष वह साधु सिद्धभक्ति और आचार्यभक्ति करता है । अनंतर आचार्यपरमेष्ठी उससे कहते हैं कि आजसे तुम रहस्य--प्रायश्चित्तशास्त्रका अध्ययन और दीक्षा देने आदिका जो आचार्यपदका कार्य है उसको कर सकते हो । अब तुमको ये कार्य करने चाहिये । इसप्रकार समस्त संघके समक्ष भाषण देकर उस साधुको पिच्छिका समर्पण करते हैं । और वह साधु उस पिच्छीको ग्रहण करता है । इसीको आचार्यपदका

ग्रहण करना कहते हैं । इसके बाद उस साधुको शांतिभक्तिके द्वारा वंदना करनी चाहिये । जैसा कि चारित्र-सारमें भी कहा है कि--" गुरूणामनुज्ञायां विज्ञानवैराग्यसंपन्नो विनीतो धर्मशीलः स्थिरश्च भूत्वाचार्य पदव्या योग्यः साधुर्गुरुसमक्षे सिद्धाचार्यभक्तिं कृत्वाचार्यपदवीं गृहीत्वा शांतिभक्तिं कुर्यात् । " अर्थात् जो विशिष्ट ज्ञान और वैराग्यकी सम्पत्तिसे युक्त तथा विनयगुणको धारण करनेवाला धर्माचरणमें ही सदा निष्ठा रखनेवाला और प्रकृतिसे ही स्थिर है वह साधु आचार्यपदवीके योग्य समझना चाहिये । ऐसे साधुको गुरुकी आज्ञासे उनके ही समक्ष सिद्धभक्ति और आचार्यभक्ति बोलकर आचार्य पदको ग्रहण कर शांतिभक्ति करनी चाहिये ।

अनगार अ. ९

धर्मामृत पान ७५९

आचार्यपदकी योग्यता सिद्ध करनेवाले छत्तीस गुण कौनसे हैं सो बताते हैं:--

अष्टावाचारवत्त्वाद्यास्तपांसि द्वादश स्थितेः । कल्पा दशाऽऽवश्यकानि षट् षट्त्रिंशद्गुणा गणेः ॥७६॥

जो अङ्गसहित प्रवचनका सौनपूर्वक अध्ययन करता है उसको गणी कहते हैं । आचार्य भी अङ्गसहित प्रवचनके अध्येता हुआ करते हैं, अतएव उनको भी गणी कहते हैं । यहांपर " गणेः " इसकी जगह " गुरोः " ऐसा भी पाठ माना है । अर्थात् आचार्य--गणी--गुरुके छत्तीस विशेष गुण हैं । यथा--आचारवत्त्व आधारवत्त्व आदि आठ गुण, और छह अन्तरङ्ग तथा छह बहिरङ्ग मिलाकर बारह प्रकारका तप, तथा संयमके अन्दर निष्ठाके सौष्ठव--उत्तमताकी विशिष्टताको प्रकट करनेवाले आचेलक्य आदि दश प्रकारके गुण---जिनको कि स्थितिकल्प कहते हैं, और सामायिकादि पूर्वोक्त छह प्रकारके आवश्यक ।

भावार्थ---आचारवत्वादि आठ, बारह तप, स्थितिकल्प दश और छह आवश्यक; इसप्रकार कुल मिलकर आचार्यके छत्तीस गुण माने हैं ।

आचारवत्त्व आदि आठ गुणोंको गिनाते हुए उनका स्वरूप बताते हैं:---

आचारी सूरिराधारी व्यवहारी प्रकारकः । आयापायदिगुत्पीडोऽपरिस्रावी सुखावहः ॥ ७७ ॥

आचारवत्त्व, आधारवत्त्व, व्यवहारपटुता, आयापायदेशना, उत्पीडन, अपरिस्रवण और सुखावहन ये आठ गुण आचार्यमें होने चाहिये । इनका स्वरूप इसप्रकार है----

आचार पांच प्रकारका है--ज्ञानाचार दर्शनाचार चारित्राचार तपआचार और वीर्याचार । इन पांचो ही

उसके मार्गमें लगाकर उसकी यथोक्त चर्याको बता सकते हैं। जैसा कि कहा भी है कि:----

एतेषु दशसु नित्यं समाहितो नित्यवाच्यताभीरुः। क्षपकस्य विशुद्धिमसौ यथोक्तचर्यां समुद्दिशति ॥

प्रतिमायोगको धारण कर खडे हुए मुनिकी क्रियाविधि बताते हैं:--

लघीयसोपि प्रतिमायोगिनो योगिनः क्रियाम्। कुर्युः सर्वेपि सिद्धर्षिशान्तिभक्तिभिरादरात् ॥ ८२ ॥

सबेरेसे सायंकालतक दिनभर सूर्यकी तरफ मुख करके कायोत्सर्गमुद्रा धारण कर खडे रहनेको प्रतिमायोग कहते हैं। इसको धारण करनेवाले योगी यदि दीक्षाकी अपेक्षा उम्रमें छोटे हों तो भी सम्पूर्ण साधुओंको अत्यंत आदरभावसे उनका क्रियाकाण्ड सिद्धभक्ति योगिभक्ति और शांतिभक्तिको बोलकर पूर्ण करना चाहिये। जैसा कि कहा भी है कि:---

प्रतिमायोगिनः साधोः सिद्धानागारशान्तिभिः। विधीयते क्रियाकाण्ड सर्वसंवैः सुभक्तितः ॥

दीक्षा ग्रहण करने और केशलोंच करनेकी क्रियाकी विधि बताते हैं:--

सिद्धयोगिबृहद्भक्तिपूर्वकं लिङ्गमर्प्यताम्। लुञ्चाख्यानाग्न्यपिच्छात्म क्ष्म्यतां सिद्धभक्तितः ॥ ८३ ॥

केशलुञ्चन, नामकरण, सर्वथा नग्न दिगम्बरअवस्था, और पिच्छी इनके समूहको जिनलिङ्गका स्वरूप समझना चाहिये। आचार्यको यह लिंग बृहत्सिद्धभक्ति और बृहत्योगिभक्ति बोलकर मुमुक्षुमें अर्पण करना चाहिये, तथा यह लिङ्गार्पणका विधान सिद्धभक्तिके द्वारा समाप्त करना चाहिये।

दीक्षादानके अनन्तर क्या कर्तव्य है सो दो पद्योंमें बताते हैं:--

व्रतसमितीन्द्रियरोधाः पञ्च पृथक् क्षितिशयो रदाघर्षः।
स्थितिसकृदशने लुञ्चावश्यकषट्के विचेलताऽस्नानम् ॥ ८४ ॥

इत्याष्टाविंशतिं मूलगूणान् निक्षिप्य दीक्षिते।
संक्षेपेण सशीलादीन् गणी कुर्यात्प्रतिक्रमम् ॥ ८५ ॥ (युग्मम्)

मुनियोंके मूलगुण अट्ठाईस हैं। यथा--अहिंसादिक पांचमहाव्रत, ईर्यासमिति आदिक पांचसमिति और

पांचोइन्द्रियोंका अपने २ विषयोंसे निरोध, ये पन्द्रह भेद हुए, इनका विशेष स्वरूप पहले लिखा जा चुका है। इनके सिवाय एक भूमिशयन, १ दांतोंका घर्षण--दन्तधावन न करना, १ दिनमें एकबार भोजन करना १ खडे होकर भोजन करना, १ विधिपूर्वक केशोंका उत्पाटन करना, ६ पूर्वोक्त छह आवश्यकोंका पालन करना, १ सर्वथा वस्त्ररहित नग्न दिगम्बरअवस्था धारण करना और १ तैल आदिका उद्वर्तन तथा जलमें अवगाहन आदिस्वरूप स्नान न करना। ये सब मिलाकर अठ्ठाईस भेद होते हैं इनके सिवाय चौरासीलाख उत्तरगुण और अठारहहजार शीलके भेद और भी हैं। दीक्षा लेनेवाले साधूमें आचार्यको संक्षेपसे इन उत्तरगुणों और शीलके भेदोंके साथ २ सम्पूर्ण उक्त मूलगुणोंका स्थापन करके व्रतारोपण सम्बन्धी प्रतिक्रमण करना चाहिये। जहांतक हो सकै यह प्रतिक्रमण उसीदिन करना चाहिये; किंतु उसदिन उत्तम मुहूर्त आदि न बनता हो तो कुछ दिन बाद भी वह किया जा सकता है।

दीक्षाग्रहणके समयको छोडकर अन्य समयमें जो केशोंका लुंचन किया जाता है उसके कालका प्रमाण और उसकी क्रिया करनेकी विधि बताते हैं:--

लोचो द्वित्रिचतुर्मासैर्वरो मध्योऽधमः क्रमात्। लघुप्राग्भक्तिभिः कार्यः सोपवासप्रतिक्रमः ॥ ८६ ॥

केशोंका उत्पाटन तीन प्रकारका हुआ करता है,--उत्तम मध्यम और जघन्य। दो महीनेके अनंतर किया जाता है वह उत्कृष्ट और जो तीन महीनेके अनंतर किया जाता है वह मध्यम, तथा जो चार महीना पीछे किया जाता है वह जघन्य समझना चाहिये। साधुओंको अपनी शक्तिके अनुसार इनमेंसे कौनसा भी लोच अवश्य ही करना चाहिये। जिसदिन लोच करना हो उसदिन उपवास और उस क्रियासम्बन्धी प्रतिक्रमण भी करना चाहिये। तथा लोचका प्रतिष्ठापन लघुसिद्धभक्ति और लघुयोगिभक्ति बोलकर, एवं निष्ठापन केवल सिद्धभक्तिके द्वारा करना चाहिये। जैसा कि कहा भी है कि--

लोचो द्वित्रिचतुर्मासैः सोपवासप्रतिक्रमः ॥ लघुसिद्धर्षिभक्त्यान्यः क्ष्म्यते सिद्धभक्तितः ॥

सामायिकचारित्रकी उत्कृष्टता और वास्तविकता दिखानेके लिये यहां बताते हैं कि वस्तुतः चारित्र एक सामायिक ही है, महाव्रतादिके रूपमें जो चारित्रका वर्णन किया जाता है वह उसीका भेदरूपसे वर्णन है। सो